International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 02-09-2025, Accepted: 01-10-2025, Published: 16-10-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 15-17

हिंदी उपन्यासों में जादुई यथार्थवाद और यथार्थ का विकेंद्रीकरण

डॉ. मणि रंजन राय, डॉ. अंकिता त्रिपाठी
Department of Hindi, B.H.U., Uttar Pradesh, India

सारांश
हिन्दी उपन्यासों में यथार्थवाद और जादुई यथार्थवाद ने सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अनुभवों को समग्र रूप में प्रस्तुत किया है। पश्चिमी यथार्थवाद तथ्यात्मक वास्तविकता तक सीमित है, जादुई यथार्थवादी परिचय ने रचनात्मकता के नवीन आयाम खोल दिए। इसी परिचय का उपयोग करके भारतीय उपन्यासकार मिथक, लोककथा और जादुई तत्त्वों के माध्यम से अनुभव और स्मृतियों को भी यथार्थ में सम्मिलित करते हैं। खिलेगा तो देखेंगे, परछाईं नाच, गायब होता देश और रेत – समाधि सरीखे उपन्यास जीवन, स्मृतियों और जादुई यथार्थवाद के मध्य गतिशीलता की खोज है, जिसमें पात्र, प्रतीक और मिथक सामाजिक, राजनीतिक और मानवीय संघर्षों को जटिल रूप से दर्शाते हैं। ये सभी उपन्यास पाठक को अपने अनुभव और कल्पना से रिक्त स्थान भरने की स्वतंत्रता देते हैं।

मूल शब्दः यथार्थवाद, जादुई यथार्थवाद, हिन्दी उपन्यास, मिथक और लोककथा, पैरोडी, सामाजिक और राजनीतिक, विसंगतियाँ, स्मृतियाँ और अनुभव, प्रतीकवाद और समय का मिश्रण

विकेंद्रित यथार्थ

यथार्थवाद, जो पश्चिमी औद्योगिक क्रांति के संदर्भ में विकसित हुआ, वास्तविक को केवल तथ्यात्मक रूप में ग्रहण करने पर जोर देता है। परंतु भारतीय परिप्रेक्ष्य में यथार्थवाद ने इसे विस्तारित रूप दिया, जिसमें मिथक, जादू, प्रकृति और असाधारण अनुभवों को भी समाहित किया गया। इस दृष्टि में वास्तविकता केवल प्रत्यक्ष या ज्ञात तक सीमित नहीं रहती, बल्कि अनुभव और अदृश्य संभावनाओं का भी अंश बन जाती है। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी उपन्यासकारों ने यूरोपीय यथार्थवाद की केन्द्रितता को चुनौती दी और लोककथा, मिथक तथा पैरोडी की ओर रुख करते हुए विश्वसनीय कथा परंपरा की खोज शुरू की। 'मैला आँचल' से 'रेत समाधि' तक यही खोज जारी रहीकृजहाँ वर्तमान को उसके सभी अंतर्विरोधों और मिथकीय तत्त्वों सहित स्वीकार करना ही यथार्थ का परिचायक बनता है।

आज के समय में, तकनीक और आँकड़ों के माध्यम से नए मिथक रोज़ बनाए जा रहे हैं। एल्गोरिदम अब कथा का नया नियंत्रक बन गया है, जिसने साहित्यिक यथार्थवाद को नए रूप में स्थापित किया। वेब 2.0 ने लेखक और पाठक के बीच की सीमाओं को मिटा दिया और तकनीकी मानववाद ने साहित्य में एक नई भाषा को जन्म दिया। इसी प्रयोग की शुरुआत रेणु ने की थी, जिन्होंने काग़ज़ी अक्षरों से पाठक को लोककथाओं और मौखिक परंपरा की ओर खींचा और प्रेमचंदीय यथार्थवाद की कठोरता को तोड़ा।

हरिशंकर परसाई की 'रानी नागफनी की कहानी' वास्तव में इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' की पैरोडी है। उन्होंने दहेज, स्त्री अधिकार, तिलक–उद्योग, चिकित्सा और राजनीति के प्रसंगों के माध्यम से बदलते समय की सामाजिक विसंगतियों का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया। पैरोडी न केवल हास्य उत्पन्न करती है, बल्कि सामाजिक संबंधों के अवमूल्यन पर गहरी टीस भी छोड़ती है।

परसाई की पैरोडी का विस्तार 'राग दरबारी' में दिखाई देता है, जहाँ यथार्थ विनोदपूर्ण होते हुए भी भयावह रूप ले लेता है। "राग दरबारी के बाद मैलोड्रामा तो व्यर्थ हो ही गया उसका शिष्ट संस्करण 'यथार्थवाद' भी बंद हो गया। राग दरबारी के बाद हिन्दी में प्रेमचंदीय श्परंपराश की दुकान ही नहीं उजड़ी, अज्ञेय, जैनेंद्र की शैली भी किनारे हो गई।"[1] श्रीलाल शुक्ल के 'पलायन संगीत' में चेतावनी दी गई है—'भागो, यथार्थ तुम्हारा पीछा कर रहा है।' इस निर्मम व्यंग्य में नेहरू–युगीन यूटोपिया का विखंडन और गांधीवादी आदर्शों का बोझ झेलता हुआ पात्र रंगनाथ उभरता है, जिसे अंततः व्यवस्था गदहा घोषित कर देती है।

गंगाप्रसाद विमल का 'मृगांतक' यथार्थ के विकेंद्रीकरण की राह में मिथक, तंत्र एवं अमरत्व की खोज के माध्यम से संवाद करता है, परंतु वैज्ञानिक तर्क का भार वह पूरी तरह नहीं संभाल पाता और उपन्यास अपने भ्रमबद्ध स्वीकार में कमजोर पड़ जाता है। कृष्ण बलदेव वैद के 'काला कोलाज' और 'मायालोक' में यथार्थ का विखंडन ऐब्सर्ड तक पहुंचता है—खंडित अनुभव, कालक्रमहीन घटनाएँ और एंटी–नोवेल की परंपरा पाठक की बौद्धिक सहनशीलता की परीक्षा लेती हैं। जिन उपन्यासों को आलोचकों ने जादुई यथार्थवादी कहा, वहाँ अक्सर चयन और पुनरावृत्ति ने रचना को क्षीण कर दिया। साहित्यिक विधा का मूल्यांकन केवल उसके तत्त्वों की सीमाओं के भीतर होना चाहिए, वरना विधा का दावा रचना पर बोझ बन जाता है। उदाहरणार्थ, चंचल चौहान ने देवकीनन्दन खत्री को जादुई यथार्थवादी कहा। वे अपनी पुस्तक शहिन्दी कथा साहित्यः विचार और विमर्शश में लिखते हैं कि "हिन्दी के कथा साहित्य में जादुई यथार्थवाद का शुरुआती रूप देवकीनन्दन खत्री के साहित्य में था, किंतु उसे हमारे यहाँ विकसित नहीं किया गया। भारत की परिस्थितियों में मौलिक रूप से उभरने वाला जादुई यथार्थवाद ही था ।"[2] लेकिन 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' में जादू कथानक का अंग नहीं, बल्कि चरित्रों का गुण है। इसी कारण खत्री का तिलिस्म पाठ को समझाने वाले फुटनोटों और संपत्ति–सुरक्षा से जुड़कर जादुई यथार्थवाद से विचलित हो जाता है। फ़्रांचेस्का ओर्सिनी ने कहा है कि "खत्री जी ने तिलिस्म का तर्क बदल दिया अर्थात् उसे संपत्ति की रक्षा और सुयोग्य तक पहुँचाने से जोड़ दिया।"[3]

हजारीप्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक उपन्यास कल्पना और मिथक का सहारा लेते हैं परन्तु उनका स्वर मानवतावादी है, जादुई नहीं। निर्मल वर्मा के उपन्यास जैसे 'वे दिन', 'लाल टीन की छत' और 'अंतिम अरण्य' व्यक्तिवादी संवेदनाओं और मौन बिखराव से भरे हैं तथा जादुई यथार्थवाद से असंबद्ध हैं। मनोहर श्याम जोशी के 'कुरु कुरु स्वाहा' और 'क्याप' उत्तर–आधुनिक व्यंग्य, पैरोडी और मार्क्सवादी आलोचना की ओर झुकते हैं, इनमें चमत्कार या मिथकीय यथार्थ का स्वाभाविक समावेश नहीं मिलता। विनोद कुमार शुक्ल की रचनाएँ जैसे 'नौकर की कमीज', 'दीवार में एक खिड़की रहती थी', बच्चों पर आधारित उपन्यास, साधारण जीवन,

दुःख और फैंटेसी के सूक्ष्म मिश्रण को रचती हैं; यह काव्यात्मक यथार्थ है, जादुई नहीं। अलका सरावगी 'कलि–कथा: वाया बाइपास' में पीढ़ियों के इतिहास को लिखते हुए जादू का प्रयोग नहीं करतीं, बल्कि कठोर यथार्थ को सामने लाती हैं। इक्कीसवीं सदी में नीलोत्पल मृणाल ('यार जादूगर'), अशोक पांडे ('लपूझन्ना'), एस. आर. हरनोट ('नदी रंग जैसी लड़की') आदि के उपन्यासों को जादुई यथार्थवाद से जोड़ा गया, लेकिन उनमें अधिकांशतः यह 'सायास निर्मित जादू' ही प्रतीत होता है। वास्तविक जादुई यथार्थवाद वहाँ होता है, जहाँ चमत्कार सहज रूप से यथार्थ में घुला हो, न कि व्याख्या और तर्क के बंधन में।

जादुई यथार्थवादी उपन्यास

खिलेगा तो देखेंगे :– एक विस्मृति का धूल–पुष्प है, जो हवा में उड़ता चला जाता है। इसने अपना सिर हवा के सामने खोल दिया है, सभी विनाश और कमजोरी के साथ, जैसे कोई लकड़ी का मानव आग के बीच से चलता हुआ गुज़र रहा हो। यह उस पुष्प का स्वरूप है जिसका कोई अधिकार नहीं है। इस आसमानी परीक्षा में एक चीज़ हवा की अदृश्य हिंसा को नियंत्रित करती है, जबकि दूसरी चीज़ टूटती हुई हार नहीं मानती है। विनोद कुमार शुक्ल का उपन्यास इसी विस्मृति का धूल पुष्प है। दुःख की अनेक परतों को उभारता हैकृदुःख को लिखने का दुःख, न लिख पाने का दुःख, पढ़ने के बाद का दुःख और झूठी आशा का दुःख। पाठशाला उजाड़ हो जाने पर गुरुजी अपने परिवार के साथ एक परित्यक्त थाने में रहने लगते हैं; गुरुजी, उनकी पत्नी, बेटा मुन्ना और बेटी मुन्नी।मुन्ना की भूख भारतीय दुर्भिक्ष की याद दिलाती है। मुन्ना को भूख लगते ही वह गिर पड़ता है और बेहोश हो जाता है, फिर भी उसके घर वाले उसे ढूँढकर रोटी पहुँचाते हैं। उसकी जेब में अठ्ठनी रहती है जिससे वह कुछ खरीद सके। पिता उसे भूखा रहने का अभ्यास कराते हैं ताकि उसका स्वाभिमान बना रहे। "भूखा रहने की जितनी आदत होगी स्वाभिमान से जीना उतना आसान होगा। स्वाभिमान को खत्म करने का जहर भूख की जड़ या जड़ी से बनाया जाता होगा।"[4]

विनोद कुमार शुक्ल का उपन्यास यथार्थ और जादू के बीच संतुलन रखता है। उनकी सरल और लयबद्ध भाषा में मानवीय विसंगतियाँ और आदर्श सहजता से सामने आते हैं। विनोद कुमार शुक्ल ने कहा है कि "मैं फैंटेसी को बहुत स्वाभाविक मानता हूँ। मेरी फैंटेसी मेरा दूसरा यथार्थ है। सब ठीक हो जाएगा की आशा में मैं अपने को और अपनों को बचाता हूँ।"[5] कहानी का प्रारंभ एक शराबी पिता के बच्चे की पुलिस थाने में मृत्यु से होता है लेकिन लेखक इसे विस्तार से नहीं दिखाते। गाँव और शहर, मानव और वस्तुएँ, समय और स्थानकृसबकी गति अप्रत्याशित और मिथकीय है।

उपन्यास में कई विलक्षण तत्त्व हैं : समझदार बस – जो दो भाग में बंटकर फिर जुड़ती है, बाँसुरी की आवाज़ – जो गाँव से स्वयं बजती है, स्टेशन मास्टर और पेड़ की मानवीय प्रतिक्रिया। यथार्थ जब कठोर या दुखद हो जाता है, तब कल्पना उसमें प्रवेश करती है। पात्रों का विकास—मुन्ना का किशोर से अधेड़ और फिर छोटा बच्चा बननाकृवर्तुल गति में चलता है। हिंसा और भय भी मिथकीय ढंग से प्रस्तुत हैं: जिवराखन अपनी पत्नी डेरहिन की हत्या का प्रयास करता है, लेकिन लकड़ी की बंदूक और मुँह से बोलने की प्रक्रिया से हिंसक भावना कम कर दी जाती है। उपन्यास अपने पूरे में मिथकों का निर्माण करता है और विलक्षणता के माध्यम से यथार्थ को नया अर्थ देता है। राजेंद्र यादव के अनुसार, "खिलेगा तो देखेंगे में न तो बहुत पात्र हैं, न घटनाएँ– तय करना मुश्किल है कि वे घटनाएँ हैं भी या सिर्फ़ उनका भ्रम है। रीयल और अनरीयल, स्वप्न और वास्तविकता इतने घुल–मिल गये हैं कि काल (अतीत–वर्तमान–भविष्य) के विभाजन घुल गये हैं।"6 शुक्ल की कथाएँ सरल शब्दों में गहन भाव और अर्थ उत्पन्न करती हैं। वस्तुओं, जानवरों, जल, पर्वत और वृक्षों के बीच अनदेखी संहिता का चित्रण उपन्यास में एक जीवंत, मानवीय और मिथकीय दुनिया खोलता है।

'परछाईं नाच':– प्रियंवद का उपन्यास सपनों और यथार्थ की परतों में घूमता है। चार दिन में डेढ़ सौ वर्षों की पीड़ा, अवचेतन की दुर्दमनीयता और जीवन की अनहद थकावट को कथानायक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। शेमल अपने पिता सदाशिव के पास रहती हैं, जबकि उसका प्रेमी अनहद आता रहता है। पात्रों के बीच सेक्स और पीड़ा का द्वैतपूर्ण संयोजन, नायक के खंडित व्यक्तित्व और परिस्थिति के विरोधाभास को उजागर करता है। कथा समय में वर्तुल गति से चलती हैकृ 1857 का सशस्त्र क्रांति काल, चिंगरिया की कहानी, शेमल–अनहद का प्रेम और सदाशिव की कहानीकृसाथ ही इतिहास और मिथक का मिश्रण प्रस्तुत करती है। अनहद आध्यात्मिक प्राथमिकता का प्रतीक है और मिथक प्रत्याभिज्ञान के लिए प्रयुक्त हुआ है। प्रियंवद बाजार और विज्ञापन के दुष्प्रभावों को भी उजागर करते हैं, जहाँ अनहद पानी के मूल तत्त्व 'प्यास' को हटा कर विज्ञापन बनाता है; पूँजीवादी समाज और सत्ता के मुद्रा–संचालन की आलोचना करता है। "हमारा बाज़ार होगा–शहर के रेलवे स्टेशन, बस अड्डे, मन्दिर, अस्पताल, श्मशान घाट, सन्त–सत्संग, नदियों के किनारे, पण्डे, कस्बे, छोटे शहर, इन कस्बों शहरों के मेले, सर्कस, जुलूस, नौटंकियाँ, रामलीला, धर्मशालाएँ, त्योहार। इस बाज़ार की विराटता और इसकी अन्धी–बहरी निष्ठा का अन्दाज़ा अभी किसी को नहीं है। हमारे इस बाज़ार में कोई दूसरा ब्राण्ड अपनी एक बोतल नहीं बेच सकता। हमारा ग्राहक अनपढ़ होगा, गँवार होगा, खेतों, कारखानों का मज़दूर होगा, पत्थर तोड़ते खदानों में काम करते मकान बनाते लोगों का होगा। आदिवासियों का बूढ़ों का साधु–भिखारियों का, अनाथों का, विधवाओं का होगा। चौराहों–फुटपाथों पर सोनेवाले का, घूँघट में जीने–मरनेवाली औरतों का होगा। इस बाज़ार में कोई दूसरा ब्राण्ड आपके मुकाबले में तब तक नहीं उतर सकेगा जब तक गंगा में पानी है और जब तक वह आपका पानी है।"[7]

उपन्यास में विलक्षण पात्र और मिथकीय तत्त्व प्रतीकवाद और बेचैनी उत्पन्न करते हैं। तीन मायावी बौने, अमर और रूप बदलते पात्र, सरकारी जासूसी और सामाजिक भय का प्रतिनिधित्व करते हैं। कहानियाँ, सपने, इतिहास और परीकथाएँ आपस में घुलकर रूपक–सत्य बन जाती हैं। पत्र–पत्रिकाओं, विज्ञापनों और टेलीविजन की रूढ़ियाँ जीवन के प्रत्यक्ष और मनोवैज्ञानिक आख्यान में सम्मिलित होकर पाठक को त्रासदी, विडंबना और जादुई यथार्थ के अनुभव से जोड़ती हैं।

'गायब होता देश': यह उपन्यास मुण्डा आदिवासियों के जीवन को केंद्र में रखते हुए बहुआयामी सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों को उजागर करता है। कहानी पत्रकार से बिल्डर बने कृष्ण कुमार झा की हत्या से शुरू होती है और राजेश को उसकी डायरी मिलती है, जिससे कहानी दो रूपबंधों में फैलती है। डायरी सामाजिक शोषण और आदिवासी विद्रोह की पड़ताल के लिए प्रयोग की गई है, जिसमें किशन विद्रोही का व्यक्तित्व प्रेम, आकांक्षा और विफलता के बीच झूलता है।

किशन विद्रोही अपनी पत्रिका श्टोटल चेंजश में लिखता है "वर्टिकल स्लम पर फ़ोटो स्टोरी, कैसे बहुमंज़िली इमारत की छोटी कोठरियों में मेहनतकश परिवार का रहना कठिन होता है? उसकी बकरियां–मुर्गियां– सुअर कहां रहेंगे? परिवार का काम–धंधा, गृहस्थी के लिए धोना–पसारना पीसना कहां करेगा? नतीजतन कुछ ही साल में बहुमंज़िली इमारतें भी वर्टिकल स्लम में बदल जाती हैं।"[8] उपन्यास आधुनिकता और वैश्वीकरण के प्रभाव को दिखाता हैकृभूमि अधिग्रहण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का

दबाव, आर्थिक मुनाफ़ा, विज्ञापन संस्कृति और निजी संपत्ति की पवित्रता के मिथक के माध्यम से आदिवासियों के जीवन पर हमला। बंदरगाह, रेल पटरी, फर्नीचर, मकान के लिए भयानक कटाई– "इन्हीं ज़रूरत से ज़्यादा समझदार इंसानों की अंधाधुंध उड़ान के उठे गुबार–बवंडर में सोना लेकन दिसुम गायब होता जा रहा था। सरना–वनस्पति जगत गायब हुआ, मरांग–बुरु बोंगा, पहाड़ देवता गायब हुए, गीत गाने वाली, धीमे बहने वाली, सोने की चमक बिखरनेवाली, हीरों से भरी नदियां जिनमें इकिर बोंगा–जल देवता का वास था, गायब हो गई।"[9] दुलमी बाँध परियोजना का विरोध करने वाले आदिवासी नेताओं की हत्या, नए औषधीय प्रयोग और पर्यावरणीय विनाश इस संघर्ष को और गहरा करते हैं। मारियो वर्गास ल्योसा का उपन्यास श्एल आब्लादोरश जो माचीग्वेंगा आदिवासी समुदाय पर केंद्रित है, उसका एक चरित्र मास्करीता इन संस्कृतियों को आदरपूर्ण देखने की बात करता हुए बताता है – "उनके प्रति आदर दर्शाने का एकमात्र तरीक़ा यही है कि हम उनके निकट न जाएँ। उन्हें न छुएँ। हमारी संस्कृति बहुत बलशाली है, बहुत आक्रामक है। वह जिसे भी छूने को बढ़ती है अंततः उसे लील जाती है।"[10]

उपन्यास में जादुई यथार्थवाद का भरपूर प्रयोग है। मुंडा आदिवासियों की मिथकीय अवधारणाएँकृजैसे गायब हो जाने वाली घास, क्रिस्टल–हीरों में संचित ज्ञान, भूमिगत लेमुरिया सभ्यताकृ साधारण यथार्थ में विलक्षण का प्रवेश कराती हैं। रणेंद्र की भाषा और संरचना में मिथक, अखबार, विज्ञापन, टीवी और भाषाई–धार्मिक विश्वासों का संयोजन जादुई और वास्तविकता का मिश्रण प्रस्तुत करता है। इस प्रकार यह उपन्यास आदिवासी जीवन, सामाजिक शोषण, वैश्वीकरण और मिथकीय–सांस्कृतिक दृष्टि को संकर रूपबंध और जादुई यथार्थवाद के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

रेत समाधि': यह उपन्यास जीवन, स्मृतियों और जादुई यथार्थवाद के मध्य गतिशीलता की खोज है। यह तीन भागों में विभाजित है—'पीठ', जिसमें बूढ़ी अम्मा वर्तमान में बिस्तर पर पड़ी हैं, जीवन और मृत्यु के बीच अपने अस्तित्व का अनुभव करती हैं; 'धूप, जिसमें माँ–बेटी का संबंध पुनर्जीवित होता है, माँ आधुनिकता को अपनाती है और दोनों के रिश्ते का रूपांतरण दिखता है और 'हद–सरहद', एक रहस्यमय यात्रा, जिसमें अपने पाकिस्तानी पति की तलाश में स्मृतियों से निकल पड़ती मुख्य पात्र बूढ़ी अम्मा हैं, जबकि अन्य पात्र उनके आसपास के संबंधों को जीवन्त करते हैं। बेटा 'बड़े' और अन्य पारिवारिक सदस्य उनके बदलते जीवन को दर्शाते हैं। माँ का स्वबोध और मानसिक स्वतंत्रता सामाजिक भय और अतीत की बाधाओं को पार करता है। माँ कल्पतरु के रूप में उठती हैं; अपनी इच्छाओं को मुक्त करती हैं और मिथकोंकृदुर्वासा, राधा, शिवजटा, बुद्धकृके माध्यम से जादुई यथार्थ को जीवित करती हैं। उपन्यास में रोज़ी नामक हिजड़ा भी महत्त्वपूर्ण है, जो समाज के बहिष्कार के बावजूद मानवीय और ऐतिहासिक संबंधों का प्रतीक है। रोज़ी मर जाती है और उसकी मृत्यु का बयान – एक ऊब मिटाने को किसी को मार देना। "उस ज़मीन पर अम्मा भी खड़ी थी और बेटी भी। और धड़ाम हुई तो सभी गिर पड़े और बाकी जो गिरे सो गिरे, रोज़ी गिरी तो मर ही गई।"[11] उसकी मृत्यु यथार्थ और औपनिवेशिक हिंसा का प्रतीक बन जाती है और उसकी आत्मा माँ के साथ पाकिस्तान जाती है। उसकी लाश के बारे में लेखिका ने लिखा है, "जैसे किसी औपनिवेशिक बड़े साहब के घर, बड़े दिन के बड़े जश्न में बड़ी – सी मेज पर बड़े से जानवर को साबुत भूना हो और तरमाल से श्ड्रेसश किया हो– चटनी में मल कर, मक्खन की पर्त लगाकर, रंग बिरंग मेवा फल भर के, लहसुन अदरख फूल पत्ती बुरक के, सजाभजा के रखा हो। मसालों, लेपों का पहनावा। कांटे छुरी पास नैपकिन पे करीने से ।"[12]

लेखिका ने आधुनिक भारत की सामाजिक–राजनीतिक विसंगतियों, उपभोक्तावादी संस्कृति, धार्मिक असहिष्णुता और राजनीतिक हिंसा को पात्रों और प्रतीकों के माध्यम से बुना है। इन्होंने उपभोक्तावाद की तुलना जहरीले साँप से करते हुए, इसे रीबॉक संस्कृति से संबोधित किया है। "पहले रीबॉक एक ज़हरीला साँप था जो अमेरिका नाम के महाद्वीप के दक्षिणी देशों में लहर–बहर फिरता था। फिर उसकी कायापलट हो गई जब किसी ने उसे खेलकूद के लिए पाँव पर लपेट लिया और उसकी सारी शेखी उससे निकल कर उसको लपेटने वाले में जा गयी।"[13] भाषा चमत्कारिक और वर्णनात्मक है, जिसमें जादू और यथार्थ की लहरें पाठक को अपने अनुभव और कल्पना के माध्यम से कहानी में जोड़ देती हैं। उपन्यास का मूल भाव पाठक की व्याख्या पर निर्भर करता है; यह स्मृतियों, अनुभवों और जादुई यथार्थ के रिक्त स्थान को पाठक की कल्पना से भरने की स्वतंत्रता देता है।

निष्कर्ष

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में यथार्थवाद और जादुई यथार्थवाद ने समाज, संस्कृति और व्यक्तिवाद के अनुभवों को समग्र रूप में प्रस्तुत किया है। ये रचनाएँ केवल घटनाओं का वर्णन नहीं करतीं, बल्कि पाठक को स्मृतियों, मिथक और प्रतीकों के माध्यम से स्वयं अर्थ निर्माण करने का अवसर देती हैं। विनोद कुमार शुक्ल, प्रियंवद, गीतांजलि श्री, रणेंद्र जैसे लेखक जटिल सामाजिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत संघर्षों को जादुई तत्त्वों और बहुआयामी दृष्टि के माध्यम से उजागर करते हैं। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में जादुई यथार्थवाद कथा का विधिक रूप होने के साथ–साथ अनुभव और कल्पना का सृजनात्मक माध्यम भी बन चुका है।

संदर्भ

1. पचौरी, सुधीश, उत्तर–यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–211, 2012.
2. चौहान, चंचल, हिन्दी कथा साहित्यः बिचार और विमर्श, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, पृष्ठ–86, 2011.
3. शुक्ल, वागीश, चंद्रकांता (संतति) का तिलिस्म, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–46, 2019.
4. शुक्ल, विनोद कुमार, खिलेगा तो देखेंगे, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ–194, 2023.
5. तिवारी, योगेश, विनोद कुमार शुक्ल : खिड़की के अंदर और बाहर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–86, 2013.
6. यादव, राजेंद्र, उपन्यास : स्वरूप और संवेदना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–127, 2007.
7. प्रियंवद, परछाई नाच, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–123–124, 2022.
8. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, गुड़गांव, पृष्ठ–218, 2014.
9. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, गुड़गांव, पृष्ठ–3, 2014.
10. ल्योसा, मारियो वार्गास, क़िस्सागो, अनु. शंपा शाह, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ–99, 2011.
11. श्री, गीतांजलि, रेत–समाधि, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ–246, 2022.
12. श्री, गीतांजलि, रेत–समाधि, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ–254, 2022.
13. श्री, गीतांजलि, रेत–समाधि, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ–34, 2022